नरेश मेहता के काव्य–सिद्धांत

डॉ० रमेश कुमार*

सहायक प्रोफेसर हिन्दी
शहीद उद्यम सिंह, राजकीय महाविद्यालय
मटक माजरी, इन्द्री, करनाल (हरियाणा), भारत

***Email ID**: rameshkumar94672@gmail.com*

Accepted: 08.11.2022 **Published**: 01.12.2022

मुख्य शब्दः नरेश मेहता, काव्य–सिद्धांत।

शोध आलेख सार

हिन्दी साहित्य के प्रयोगधर्मी रचनाकार नरेश मेहता दूसरा सप्तक के प्रमुख कवि हैं। इनके काव्य में परम्परा और आधुनिकता का अद्भुत समन्वय है जो छायावादोत्तर काल में कवि की अलग विशिष्ट पहचान बना देता है। 'दूसरा सप्तक' के कवि होने के कारण दीर्घ समय तक उनकी गणना प्रयोगवादी कवि के रूप में की जाती रही है, किन्तु जो लोग उनके चिन्तन, उनकी वैचारिक पृष्ठभूमि एवं उनके काव्य–विकास के विविध सोपानों से निकटता से परिचित हैं, वे सहज ही लक्ष कर सकते हैं कि वे एक ओर जहाँ सप्तक परम्परा में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं वहीं दूसरी ओर नई मनःस्थिति एवं नए भावबोध का नूतन शिल्पविधान में सृजन कर अपनी ऊर्ध्वमुखी काव्य प्रतिभा का परिचय दे रहे हैं। कवि ने अपने परिवर्तित युग संदर्भों से जुड़ना चाहा, इसलिए उन्होंने प्रयोगशील दृष्टि को अपनाया। कवि ने समकालीन जीवन की विवशता, संशय, बेचैनी और अमानवीय भयावहता की बेबाक अभिव्यक्ति की है।

पहचान निषान

**Corresponding Author*

काव्य विषयक धारणाएँ– नरेश मेहता की काव्य विषयक अपनी वैचारिक सरणियाँ हैं जिनमें से होकर उनकी अनुभूति ने काव्यरूप धारण किया है। कवि काव्य को एक अखण्ड चेतन प्रवाह मानता है जो शब्दरूप होने से पूर्व अखण्ड होता है और कवि के माध्यम से मूर्त हो उठता है। वे लिखते हैं–''कविता का कोई कर्त्ता नहीं होता, और यदि कोई है, तो वह स्वयं अपनी आत्मकर्त्ता है, स्वयं सृष्टा है।

जिसे कवि कहा जाता है वह तो मात्र प्रस्तोता होता है, वह इसलिए कि कवि नहीं बल्कि उसका मनीषी व्यक्तित्त्व या चैत्यपुरुष उस काव्य का साक्षात अनुभवकर्त्ता या दृष्टा था।''[1]

प्रश्न उठता है कि जब अनभिव्यक्त रूप में कविता पहले से ही विद्यमान है तो उसके विविध रूप कहाँ से आ गए। इसके उत्तर में नरेश मेहता का निम्न अभिमत उद्धरणीय है–''अभिव्यक्ति एक को अनेक बनाती है। कविता भी वस्तुतः एक ही है, उसका रचनात्मक स्वरूप अनेक का हो सकता है।''[2] वस्तुतः कवि की धारणानुसार जिस प्रकार प्रकृति की पत्येक वस्तु भिन्न–भिन्न रूपों में प्रकट है, उसी प्रकार कविता भी नानाविद रूपों में हमारे सामने आती हैं।

कवि ने दृष्टा एवं कवि का अस्तित्त्व अलग–अलग माना है। दृष्टा का कार्य आनुभाविकता है तो कवि का रचनात्मकता। दोनों की स्थितियों में गुणात्मक पार्थक्य है और इनकी युति काव्य साधना से ही संभव है। यह साधना कवि दृष्टि में भाषा एवं व्यक्तित्व दोनों स्तरों पर संभव है। व्यक्तित्व के स्तर पर उत्तरोत्तर विस्तार करते जाना ही साधना है और इस प्रक्रिया में जब वह देश एवं कालातीत हो जाता है तो उसके पास न भाषा रहती है और न अन्य कोई अभिव्यक्ति, भक्तिकालीन संत कवियों ने इस स्थिति को 'गूँगे का गुड़' कहा है, लेकिन भाषायी स्तर पर पहुँच कर यही साधनानुभूति काव्य बन जाती है। कवि के शब्दों में–''कविता अपनी अभिव्यक्ति के लिए उस कवि विशेष की संज्ञा, भाषा मुद्रा आदि धारण कर लेती है और रचना बन जाती है।''[3]

काव्य की श्रेष्ठता–अश्रेष्ठता, शाश्वतता एवं उदात्तता के संबंध में कवि की मान्यता है–''रचना की उदात्तता से तात्पर्य है कि वह केवल अपने स्रष्टा, रचयिता की गरिमा, महत्ता का ही बोध न करवाए, बल्कि पाठक की गरिमा तथा स्वत्व को भी संबोधित, जाग्रत तथा उदात्त करे।''[4]

उदात्तता के संबंध में कवि ने कवि की मानसिकता के योगदान का स्मरण भी किया है। उनकी विचारधारा में रचना की उदात्तता एवं उसके संबोधन का परिवृत्त तभी विशाल होगा जब कवि की मानसिकता का फलक विस्तृत एवं विविधमयी होगा। उनकी दृष्टि में कविता एवं कवि का अंतर्संबंध बहुत गूढ होता है। कविता में कवि के अहं या व्यक्तित्व का पुट रहता है इसीलिए कवि व्यक्तित्त्व का विश्लेषण काव्य का विवेचन करने हेतु आवश्यक है, किन्तु नरेश मेहता का मानना है–''रचना में कवि और कविता दोनों समान वर्चस्व में नहीं हो सकते हैं। एक की उपस्थिति के लिए दूसरे को अनुपस्थित होना पड़ेगा अपेक्षाकृत।''[5] वस्तुतः किसी भी पूर्वाग्रह का अभाव एवं निर्वेद स्थिति ही काव्य की शाश्वतता की कसौटी है। काव्य की रचना प्रक्रिया के संबंध में नरेश मेहता अपना अलग दृष्टिकोण रखते हैं। वे कविता करना और कवि होना, भावात्मकता के दो भिन्न स्तर मानते हैं। उन्हीं के शब्दों में–''सब कविता

काव्यात्मकता नहीं हुआ करती। मात्र कविता करना बाह्य प्रक्रिया है, परन्तु काव्यात्मकता का साक्षात् कविता करने से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। बहुत संभव है कि मात्र कविता हमें एक विशिष्ट भावदशा तक ही ले जाए जबकि काव्यात्मकता भावदशा या विशिष्ट भाव स्थिति है। कविता के लिए भावों के तनाव की आवश्यकता हो सकती है, परन्तु काव्यात्मकता तो अपने 'स्व' के गुरुत्वाकर्षण की उल्लंघनता है। काव्य से मुक्त हो जाने का नाम ही काव्यात्मकता है।''[6]

कवि का स्पष्ट मानना है कि अधिकांश कवि समकालीन दबाव के कारण अपनी काव्यात्मक ऊर्ध्वता वाली मनोभूमि पर नहीं पहुँच पाते हैं। ऐसे में उनकी कविता भाषायी मुहावरे के चौखटे में गढ़े शब्द मात्र रह जाती है, लेकिन जो कवि समकालीन वातावरण के दबाव के घेरे को तोड़ता है वही काव्यात्मक आस्वाद से परिचय प्राप्त करता है। काव्य–प्रयोजन के संबंध में नरेश मेहता की दृष्टि व्यापक कही जा सकती है। वे लिखते हैं–''सामान्यतः तो प्रयोजन एक ही है कि मनुष्य मात्र को उसके भीतर जो अनभिव्यक्त 'पुरुष' है (जिसे दर्शन, योगमाया सुप्त की संज्ञा देता है।) उसको रूपायित तथा संचरित किया जाए, साथ ही जितनी भी पदार्थिक सत्ताएँ हैं उनको उनके महत् रूप 'प्रकृति' के साथ तदाकृत किया जाए। विराट 'पुरुष' और भाषा और विगतकाल के आध्यात्मिक दर्शन सूत्रता में जो कुछ भी कहा जाए, वही काव्य का प्रेय है।''[7]

इसके अतिरिक्त अपने खंडकाव्य 'प्रवाद पव' की भूमिका में वे लिखते हैं–''काव्य का एकमात्र कार्य है व्यक्ति मनस् और समष्टि मनस् में समरसता स्थापित करना।''[8] वस्तुतः 'कविता जब प्रतिकविता को जन्म देती है तो वह उसका प्रयोजन होता है।'[9] प्रथम दो उद्धरणों में कवि का मन्तव्य समरसता से है, लेकिन कविता की प्रतिकविता के संबंध में एक प्रश्न सहसा उभरता है कि जब कवि पहले ही यह कह चुका है कि कविता या काव्य अनभिव्यक्त की प्रतिकृति है तब कविता की प्रतिकविता कहने का क्या तात्पर्य है? इसके उत्तर में कह सकते हैं कि कविता का उद्देश्य परोपकार, आंनद प्राप्ति, कल्याण, आत्म परिष्कार आदि है और जब यह विचारधारा सहृदय में मूर्तरूप होती है तो कविता की प्रतिकविता ही जन्म लेती है अर्थात् कविता व्यावहारिक रूप ग्रहण कर लेती है, किन्तु इन दोनों में मूलभूत अन्तर व्यक्तित्व एवं भाषा का है, क्योंकि कवि की कविता सहृदय के मनस में उसके व्यक्तित्त्व एवं भाषायी समझ के आधार पर रूपायित होती है, लेकिन इस अन्तर के बाद भी परिणति समान ही रहती है।

नरेश मेहता काव्य का संबंध धर्म एवं दर्शन से मानते हैं। उनके अभिमत में काव्य, धर्म और दर्शन की भाषा है तो धर्म और दर्शन काव्य मात्र कारण है। असंबोधित काव्य ही धर्म और दर्शन है जबकि संबोधित धर्म दर्शन ही काव्य। धर्म में अपने से बाहर जाना होता है जबकि दर्शन में बाहर से 'स्व' में

लौटना होता है। काव्य इन दो भिन्न ध्रुवीय उदात्त यात्राओं की रम्य व्याख्या है। ये (धर्म, दर्शन) काव्य के बिना रह सकते हैं परन्तु काव्य नहीं। नरेश मेहता ने अपने काव्य में उपनिषद् एवं पौराणिक ग्रंथों की घटनाओं एवं उनके मिथकीय चरित्रों को आधार बनाया है। पौराणिक ग्रंथों की घटनाओं एवं मिथकीय चरित्रों की मौलिक उद्‌भावनाएँ वही रचनाकार कर सकता ह जिसके पास व्यापक दृष्टि एवं सृजनात्मक क्षमता होती है। कवि का मत है कि–''महाग्रंथों में जो घटनाएँ हैं यदि उन्हें यथातथ्य रूप में ही ग्रहण किया जाए तो वह रचना मात्र इतिवृत्तात्मक हो जाएगी।''[10] कवि इस इतिवृत्तात्मक डिंब को तोड़कर किसी मिथकीय चरित्र को महिमा मंडित करने का पक्षधर भी नहीं है। ऐसा करने से वर्णित चरित्र कीर्तन प्रिय प्रतिमा बनकर मन्दिर मंडित हो जाता है। किसी चरित्र के प्रति इस प्रकार का दैवीय आग्रह वर्तमान समय में साहित्य की सीमा का अतिक्रमण है। इस संदर्भ में नरेश मेहता तुलसीदास का दृष्टांत देते हुए लिखते हैं–''तुलसीदास के पूर्व भी राम देवता थे, परन्तु तुलसी ने राम के चरित्र के देवत्व को आग्रह के साथ रेखांकित किया। इसी आग्रह दृष्टि के कारण तुलसी प्रायः साहित्य की सीमा का भी अतिक्रमण करते रहते हैं। नतीजा यह हुआ कि सृजनात्मक मनस राम से दूर होता गया।''[11]

नरेश मेहता ने काव्यभाषा एवं काव्य–प्रयोगों संबंधी अपनी धारणाएँ यथा स्थान स्पष्ट की हैं। कवि के शब्दों में–''प्रायः तो भाषा के स्तर पर ही अधिकांश कवि, काव्य, श्रोता एवं पाठक काव्यात्मकता की तलाश में रहते हैं। कितने जानते हैं कि काव्य, भाषा के शब्द और अर्थ से मुक्ति दिलाने की प्रक्रिया है। भाषा के बंधन का नहीं मुक्ति का नाम काव्य है।''[12]

भाषा का संस्कारित होना अनिवार्य प्रक्रिया हैं। उन्नत मनःस्थिति को अनुन्नत भाषा अभिव्यक्त नहीं कर सकती है। भाषा को संस्कारित करने के लिए कवि रचनात्मक प्रयोगां का पक्षधर हैं। वे लिखते हैं–''भाषा का प्रयोग हम अपने अर्थ के पूर्ण सम्प्रेषण के लिए ही तो करते हैं, परन्तु जब हमारा अर्थ, भाषा के स्वरूप और शब्दता का अतिक्रमण कर रहा होता है तब हमें भाषागत प्रयोगों की आवश्यकता होने लगती है। प्रयोग का तात्पर्य ही यह होता है कि भाषा और अर्थ में दूरी कम से कम रहे।''[13]

काव्य के शिल्पगत तत्त्वों बिम्ब, प्रतीक, मिथक आदि के संबंध में नरेश मेहता लिखते हैं–''बिम्ब, प्रतीक और मिथक काव्य के वस्तुतः वे अस्त्र हैं जिनके माध्यम से वह पदार्थ, सत्ता और चेतन्य को विभिन्न प्रकार से व्यक्त करता है। अतः बिम्ब, प्रतीक और मिथक सभी का प्रयोजन है कि हममें काव्यात्मकता जन्म ले और उस जन्म के बाद वे बिम्ब, प्रतीक और मिथक निःशेष हो जाएँ। कोई भी बिम्ब, प्रतीक और मिथक रचना के बाहर नहीं आया करते। हम तक जो आता है वह है उनका प्रयोजन। प्रयोजन पर ही बिम्ब,

प्रतीक और मिथक की शक्ति और सार्थकता निर्भर करती है।''[14] ये सभी धारणाएँ उनके काव्य की रचना प्रक्रिया के विवेचन में भी सहयोगी हैं।

धारणाओं की मौलिकता– नरेश मेहता की काव्य विषयक धारणाएँ मात्र सिद्वान्तों का पिष्ट पेषण नहीं है, वरन् उनमें कवि की नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा बिम्बित होती है। प्रायः नई कविता में व्यक्तिवादिता की प्रधानता है, किन्तु नरेश मेहता के दृष्टिकोण में व्यक्तिवाद केवल व्यक्ति केन्द्रित नहीं है वरन् वह मानवीय जीवन मूल्यों से कहीं अधिक संपृक्त है। उनका यह कहना कि 'ओ वरेण्य पिता लिख सकूँ प्रत्येक की हाहाकार कोलाहल कथा।' प्रमाणित करता है कि वे व्यक्तिवादी विचारधारा से मौलिक रहे हैं।

कवि अपने प्रारम्भिक रचना दौर में प्रकृतिवादी रहे हैं, किन्तु मौलिकता उनके काव्य में प्रकृति चित्रण संबंधी धारणाओं में भी देखने को मिलता है। उनकी विचारधारा में प्रकृति को स्थूल चाक्षुक इन्द्रियों से निहार कर उसका काव्यमय चित्रण कर देना भर नहीं है, वरन् प्राकृतिक सौन्दर्य को संस्कृति की आँखों से आत्मसात् कर तदुपरान्त उसका काव्यमय चित्रण करना अधिक न्यायसंगत है। उनकी इस मौलिकता का आंकलन करते हुए सुप्रसिद्ध कवि गजानन माधव मुक्तिबोध ने ठोक ही लिखा है–''समय के विशाल केनवास पर देश देशान्तरों के मानव चित्रों का विहंगावलोकन करने का श्रेय नरेश मेहता को प्राप्त है।''[15]

नरेश मेहता के वैचारिक व्यक्तित्व ने समाज के प्रत्येक महत्त्वपूर्ण पक्ष को अपने स्वतंत्र चिंतन से एक नया स्वरूप प्रदान किया है। इसमें धर्म भी एक है। प्रायः धर्म को किसी विशेष संप्रदाय, मठ, संस्थान आदि से जोड़कर देखा जाता रहा है, किन्तु उनकी दृष्टि में धर्म प्रकृति की भाँति उदार एवं असंग होता है। धर्म ऊर्ध्वोन्मुख असंगता से प्रभूत होकर जब रचनात्मकता धारण कर लेता है तब कहीं जाकर काव्य या साहित्य के उपयुक्त होता है। उनकी नवीनता इसी में है कि उन्होंने धर्म को बंधन रहित मानते हुए और उसके मूल स्वरूप को मानव के सम्मुख लाने के लिए उसे काव्य के साथ प्रस्तुत करने का स्तुत्य प्रयास किया है। ऐसे प्रयोग हमारे हिंदी साहित्य के भक्तिकाल में देखने को मिलते हैं।

नरेश मेहता ने पाश्चात्य एवं पौर्वात्य में जो भिन्नता स्पष्ट की है उसमें भी मौलिकता है। उनका विचार है–''मुझे यह लगता है कि भारतीय शेष मानवता से इसी अर्थ में भिन्न है कि हमारी विकास यात्रा हिंसा से अहिंसा की ओर रही है। जबकि शेष मानवता की यात्रा हिंसा से घोर हिंसा की ओर। भारतीयता ने जड़ को भी चेतनत्व प्रदान किया जबकि शेष ने मनुष्य को भी जड़ बना देने का उपक्रम किया है।''[16] कवि का यह मत अंतरराष्ट्रीय चिन्तन धारा को नवीन आधारभूमि प्रदान करता है।

हिन्दी साहित्य के अधिकांश कवि अपने महाकाव्यों, खंडकाव्यों से यह सिद्ध करते रहे हैं कि युद्ध का कारण सत्ता परिवर्तन रहा है अथवा अधर्म पर धर्म की विजय, किन्तु नरेश मेहता युद्ध को इतिहास रचना का एक ऐसा दर्शन मानते हैं जिसमें स्वत्व एवं अधिकार प्राप्ति के दायित्व की झलक मिलती है। इतिहास जैसे शुष्क विषय को दर्शन की संज्ञा देना अपने आप में नवीन है।

नरेश मेहता की विचारधारा में साहित्य मानव जीवन से पूर्णरूपेण सम्बद्ध है। इसके माध्यम से व्यक्ति अनास्था, संशय, नैराश्य एवं पराजय के भावों से मुक्ति ही नहीं पाता वरन् इनके मध्य से सकारात्मक एवं रचनात्मक दृष्टि को व्यापक बनाता है।

हिन्दी साहित्य के अधिकांश विद्वान 'रामायण' व 'महाभारत' प्रभृत आर्ष ग्रंथों को मात्र महाकाव्य की संज्ञा देते हैं, लकिन नरेश मेहता की दृष्टि में–''कम से कम महाभारत तो मात्र महाकाव्य नहीं लगता। इतिहास की कैसी ही समग्र संज्ञा उसके लिए छोटी ही होगी। वह स्वयं ही अपने में इतना सम्पूर्ण संसार है कि उसकी एकमात्र प्रतिसृष्टि ही सम्भव है। कई बार तो ऐसा लगता है कि महाभारत काव्य मात्र की भृगु संहिता है। किसी भी देशकाल में मनुष्य कैसा ही वैयक्तिक अथवा सामाजिक आचरण करे, महाभारत में उसकी प्रतिकृति अवश्य मिल जाएगी। मनुष्य व्यवहार का यह प्रथम एवं अंतिम कोष है।''[17]

नरेश मेहता ने भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य के उदात्त स्वरूप में भी मौलिक भिन्नता प्रकट की है। उनका मत है कि –''भारतीय संदर्भ में सारी महत्त्वपूर्ण कविता धार्मिक महाभाव प्रधान रही है, परन्तु सामी साहित्यों में धर्म और काव्य में ऐसी कोई युति नहीं है। अपनी रचनात्मक अक्षमता की क्षतिपूर्ति के लिए पश्चिम ने गद्य का विकास यथार्थ के धरातल पर किया। मिथकों के अभाव को यथार्थ चरित्रों के द्वारा दूर करने की चेष्टा की गयी।''[18]

कवि के उक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके रचनात्मक मनस् में उत्कृष्ट साहित्य की कसौटी आध्यात्मिकता रही है। 'धार्मिक महाभाव प्रधान' पद हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की ओर संकेत करता है जो 'स्वर्णयुग' की संज्ञा से अभिहित किया गया, किन्तु कवि ने यथार्थ को एक सिरे से अस्वीकार नहीं किया है। उनका मत यहाँ उल्लेखनीय है–''साहित्य की आधारभूत भावभूमि यथार्थ ही होती है परन्तु प्रश्न है सर्जनात्मक दृष्टि का। जब तक वह ऊर्ध्वोन्मुखी असंगता से प्रभूत नहीं होगी तब तक कैसा ही मेधावी प्रणयन क्यों न हो सामाजिक परिवर्तन का कारण नहीं बन सकता।''[19]

वस्तुतः कवि यथार्थ को भी उतना ही महत्त्व देता है जितना आदर्श को। उनकी विचारधारा में आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद का चित्रण ही श्रेयस्कर है। इस आदशान्मुखी यथार्थवाद का चित्रण कथा सम्राट मुंशी

प्रेमचन्द की रचनाओं में देखने को मिलता है तो काव्य के संदर्भ में नरेश मेहता की काव्य रचनाओं में भी परिलक्षित होता है।

काव्य के संबंध में विद्वानों ने पर्याप्त विचार विमर्श प्रस्तुत करते हुए अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मानवीय विकारों का परिष्कार करने को काव्य का प्रयोजन स्वीकारते हुए लिखा है–''जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द–विधान करती आई है उसे कविता कहते हैं।''[20] छायावादी कवियों में जयशंकर प्रसाद की काव्य संबंधी अवधारणा भी यहाँ उल्लेखनीय है–''काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है जिसका संबंध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है। यह एक श्रेयमयी पय रचनात्मक ज्ञानधारा है।''[21] नरेश मेहता की परम्परा मिश्रित और मौलिकता अनुस्यूत परिभाषा यहाँ प्रासंगिक जान पड़ती है–''काव्य, मनुष्य और भाषा दोनों की ही उदात्ततम एवं विकसिततम अवस्था है। नर का नारायणत्व तथा भाषा का मंत्रत्व, प्रकारान्तर से काव्यात्मक उदात्तता के ही नाम हैं।''[22]

काव्य संबंधी उक्त अवधारणाओं में आचार्य शुक्ल ने रस को अनिवार्य मानते हुए भावात्मक काव्य को ही केन्द्र में रखा है जबकि चमत्कारपूर्ण एवं कल्पना प्रधान काव्य का भी अपना महत्त्व होता है। इसलिए यह लक्षण अपने आप में पूर्ण नहीं है और जयशंकर पसाद द्वारा प्रदत्त लक्षण में अस्पष्टता है। नरेश मेहता के काव्य लक्षण पर दृष्टिपात करें तो कहा जा सकता है कि उन्होंने हृदय की मुक्तावस्था के लिए काव्य रचना करने हेतु भाषा की उदात्तता पर बल भी दिया है। अतः भाषायी आग्रह के कारण ही उनके काव्य में शिल्पगत नवीनता देखने को मिलती है। क्योंकि साहित्य का मूल प्रयोजन सहृदय का रसास्वादन करना है, इसलिए जो साहित्य रसास्वादन की प्रक्रिया पर खरा उतरता है वही साहित्य नरेश मेहता की दृष्टि में मौलिक और उदात्त है।

वस्तुतः प्रत्यक रचनाकार की विचारधारा, चिन्तन–मनन एवं दर्शन आदि में मौलिकता रहती है। अपनी इसी मौलिकता के फलस्वरूप उनकी अलग पहचान होती है। नरेश मेहता अपने रचनाकाल में अपने मौलिक चिन्तन एवं दर्शन के कारण सहृदयों एवं बुद्धिजीवियों का ध्यानाकृष्ट करते हैं। जिस काल में आम आदमी पर कविता की जा रही थी और काव्यभाषा को सपाट बनाया जा रहा था, उस समय नरेश मेहता अपनी अभिजात्य संवेदनाओं एवं जनसाधारण की वेदनाओं को समानांतर अभिव्यक्ति प्रदान कर रहे थे। 'उत्सवा' एवं 'अरण्या' काव्य–संकलनों में कवि वैदिक काल में पहुँच जाते हैं तो 'देखना एक दिन', 'तुम मेरा मौन हो' और 'आखिरी समुद्र से तात्पर्य' जैसे काव्य संकलनों में वे आधुनिक काल के सामान्य जन के बिलकुल समीप पहुँच जाते हैं। कहना न होगा कि

अपनी काव्य यात्रा को ऐतिहासिक वीथियों से विचरण कराते हुए आधुनिक भावभूमि पर लाकर खड़ा करना नरेश मेहता की मौलिकता का प्रतिफलन ह।

धारणाओं का काव्य में प्रतिफलन – नरेश मेहता की काव्यषविषयक धारणाओं के आलोक में उनके काव्य पर दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि उनकी धारणाएँ काव्य में पर्याप्त प्रतिफलित हुई हैं। कवि समस्त ब्रह्माण्ड को एक काव्य मानते आए हैं और उन्होंने लिखा भी है–''मैंने इस भूमि को जब भी देखा है,गायत्री ही देखा है।''[23] यद्यपि आज का मनुष्य प्रकृति का दोहन निरन्तर कर रहा है तथापि नरेश मेहता ने अपनी कविता से प्रकृति एवं मानव के मध्य संवाद स्थापित करने की आदर्श चेष्टा की है। 'उत्सवा', 'अरण्या', 'बनपाखी! सुनो!!', 'देखना, एक दिन' एव 'तुम मेरा मौन हो' आदि काव्य संकलनों में कवि के प्राकृतिक प्रेम का चित्रण करने वाली असंख्य कविताएँ हैं। 'उत्सवा' की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए–

''धरती के काव्य संकलन जैसे ये वन, उपवन
साम्राज्ञियों के चीनांशुकों से ये धनखेत
खुला कार्तिक अबाध आकाश
कृष्ण आकुल गोपिका नेत्रों जैसे ये श्यामल मेघ
वृन्दावनी सारंग सी ये दक्षिणात्य हवाएँ
कुछ भी,
क्या कुछ भी तुम्हें अब आमन्त्रित नहीं करते?''[24]

कवि की युद्ध संबंधी अवधारणा का प्रतिफलन उनके खंडकाव्यों 'संशय की एक रात', 'महाप्रस्थान' एवं 'प्रवाद पर्व' आदि में हुआ है। जहाँ रामधारी सिंह 'दिनकर' प्रभृत कवि अधर्म की चरमावस्था को तोड़ने के लिए युद्ध को एकमात्र उपाय मानते हैं वहीं नरेश मेहता ने 'संशय की एक रात' में ऐसी स्थिति में भी एक बार मानव को पुनर्विचार के लिए प्रेरित किया है। 'संशय की एक रात' में इस प्रकार का निर्णय वे जनता के हाथ में सौंप देते हैं क्योंकि अंततः युद्ध आम जनता को ही करना है, अकेला राजा युद्ध नहीं जीत सकता। राम का यह कथन इसका प्रमाण है–

''अब मैं निर्णय हूँ सबका
अपना नहीं
क्योंकि मैं अब निर्णय हूँ
व्यक्ति नहीं।''[25]

हिन्दी साहित्य में आज दलित चेतना की अवधारणा प्रमुख रूप से उभर रही है। यह नरेश मेहता के 'शबरी' खंडकाव्य में विद्यमान है। शबरी का यह कथन इसका प्रमाण है–

''क्या आत्मा की उन्नति केवल
है उच्चवर्ग तक ही सीमित?
प्रभु तो हैं सबके पिता, भला
उनका आराधन क्यों सीमित?''[26]

नरेश मेहता अपनी काव्यभाषा के कारण भी समालोचना के केन्द्र में रहे हैं। काव्य भाषा में प्रयोग के प्रति वे आग्रही रहे हैं और अपने नवीन प्रयोगों का स्पष्टीकरण उन्होंने अपने काव्य में यथास्थान किया है।

संदर्भानुसार शब्द–चयन पर बल देने की बात वे प्रारंभ से ही करते रहें हैं। देश के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक गौरव का यशोगान करने और देश को वैभव की कुहेलिका से बाहर निकालने के लिए 'महाप्रस्थान', 'संशय की एक रात', 'प्रवाद पर्व' आदि में आर्ष शब्दावली का प्रयोग किया है तो वर्तमान जीवन की त्रासदमयी स्थिति का चित्रण 'पिछले दिनों नंगे पैरों', 'आखिर समुद्र से तात्पर्य', आदि की यथार्थ शब्दावली में हुआ है। दार्शनिक शब्दावली का प्रयोग उनके 'पुरुष' नामक काव्य में देखने को मिलता है। वस्तुतः उनके प्रयोग अनुभूत कथ्य के अनुरूप हैं।

मिथक और प्रतीक के संदर्भ में मौलिकता का प्रतिफलन उनके खंडकाव्यों एवं मुक्तकों दोनों में देखने को मिलता है। अपने खंडकाव्यों में राम, सीता, लक्ष्मण, हनुमान, युधिष्ठिर, द्रौपदी, भीम, अर्जुन, शबरी आदि को प्रतीक अर्थ में प्रयुक्त करते हुए कवि ने ऐतिहासिक पात्रों एवं घटनाओं द्वारा आधुनिक युग की विद्रूपताओं को उकेरा है।

छन्द संबंधी प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में हुए हैं। जहाँ एक ओर 'शबरी' एवं 'प्रार्थना पुरुष' छन्दोबद्ध काव्य रचनाएँ हैं वहीं दूसरी ओर 'संशय की एक रात', प्रवाद पर्व', महाप्रस्थान', खंडकाव्य एवं अन्य काव्य संकलन मुक्तक छन्द में विरचित हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जहाँ मुक्तक छन्द की कविता का युग था वहाँ श्रीनरेश मेहता ने छन्दोबद्ध एवं मुक्तक रचना करके अपनो काव्य प्रतिभा का परिचय दिया है। उनका निम्नलिखित कथन काव्य–विषयक धारणाओं के प्रतिफलन को पुष्ट करता है–'शब्द पर जाकर खड़े मत रहा, शब्द का उल्लंघन ही कविता है।'

कहा जा सकता है कि यद्यपि नरेश मेहता ने अपनी काव्य–विषयक धारणाओं का प्रतिफलन अपने काव्य में किया तथापि हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि उनकी प्रत्येक कविता अपने आप में एक धारणा है, क्योंकि प्रत्येक कविता सर्वथा मौलिक और नूतन होती है और जब रचनाकार काव्य रचना करता तो उसके रचनामनस में धारणा कम, अनुभूत कथ्य अधिक उमड़–घुमड़ रहा होता है। ऐसे में अनुभूति जो शब्दाकार लेती है वह स्वतः अपना वक्तव्य होती है और जो उसकी चारित्रिक शक्ति के विवेचन–विश्लेषण के उपयुक्त होती है। फिर भी कवि की धारणाओं के प्रतिफलन का विवेचन कर लेने से कवि की रचना–प्रक्रिया को समझने मं सरलता रहती है। इस दृष्टि से नरेश मेहता की धारणाओं और काव्य अन्तर्संबंध परस्पर परिपुष्ट दिखाई देता है।

संदर्भ :

1. श्रीनरेश मेहता : 'उत्सवा' की भूमिका अथातो काव्य जिज्ञासा से,पृ0–13 ।
2. श्रीनरेश मेहता : 'उत्सवा' की भूमिका अथातो काव्य जिज्ञासा से,पृ0–13 ।
3. श्रीनरेश मेहता : 'उत्सवा' की भूमिका अथातो काव्य जिज्ञासा से,पृ0–16 ।

4. श्रीनरेश मेहता : 'उत्सवा' की भूमिका अथातो काव्य जिज्ञासा से,पृ0–18 ।

5. श्रीनरेश मेहता : 'उत्सवा' की भूमिका अथातो काव्य जिज्ञासा से,पृ0–18 ।

6. श्रीनरेश मेहता : 'प्रवाद पर्व' की भूमिका से उद्धृत,पृ0–8 ।

7. श्रीनरेश मेहता : 'अरण्या' की भूमिका काव्य : एक शब्द यज्ञ से उद्धृत,पृ0–9 ।

8. श्रीनरेश मेहता : 'प्रवाद पर्व' की भूमिका से उद्धृत,पृ0–10 ।

9. श्रीनरेश मेहता : 'उत्सवा' की भूमिका से उद्धृत,पृ0–9 ।

10. श्रीनरेश मेहता : 'उत्सवा' की भूमिका से उद्धृत,पृ0–9।

11. श्रीनरेश मेहता : 'उत्सवा' की भूमिका से उद्धृत,पृ0–8 ।

12. श्रीनरेश मेहता : 'प्रवाद पर्व' की भूमिका से उद्धृत,पृ0–9 ।

13. श्रीनरेश मेहता : 'प्रवाद पर्व' की भूमिका से उद्धृत पृ0–12 ।

14. श्रीनरेश मेहता : 'अरण्या' की भूमिका से उद्धृत,पृ0–20 ।

15. गजानन माधव मुक्तिबोध : 'नये साहित्य का सौंदर्य शास्त्र',पृ0–39 ।

16. श्रोनरेश मेहता : 'महाप्रस्थान',पृ0–16।

17. श्रोनरेश मेहता : 'महाप्रस्थान',पृ0–10 ।

18. श्रोनरेश मेहता : 'महाप्रस्थान',पृ0–13, 14 ।

19. श्रोनरेश मेहता : 'महाप्रस्थान',पृ0–15 ।

20. रामचन्द्र शुक्ल : 'चिन्तामणि भाग–1',पृ0–192 ।

21. जयशंकर प्रसाद : 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध',पृ0–17 ।

22. श्रीनरेश मेहता : 'प्रवाद पर्व' की भूमिका से उद्धृत,पृ0–7 ।

23. श्रीनरेश मेहता : 'उत्सवा',पृ0–25 ।

24. श्रीनरेश मेहता : 'उत्सवा',पृ0–54 ।

25. श्रीनरेश मेहता : 'संशय की एक रात',पृ0–85 ।

6. श्रीनरेश मेहता : 'शबरी',पृ0–19 ।